SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

राष्ट्रीय चेतना में हिंदी उपन्यासों की भूमिका

निर्भय शर्मा, पी–एचडी, हिंदी विभाग
संघटक राजकीय महाविद्यालय, भदपुरा, नवाबगंज, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
निर्भय शर्मा, पी–एचडी
E-mail : dr.nirbhaysharma@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 15/09/2025
Revised on : 15/11/2025
Accepted on : 25/11/2025
Overall Similarity : 02% on 17/11/2025

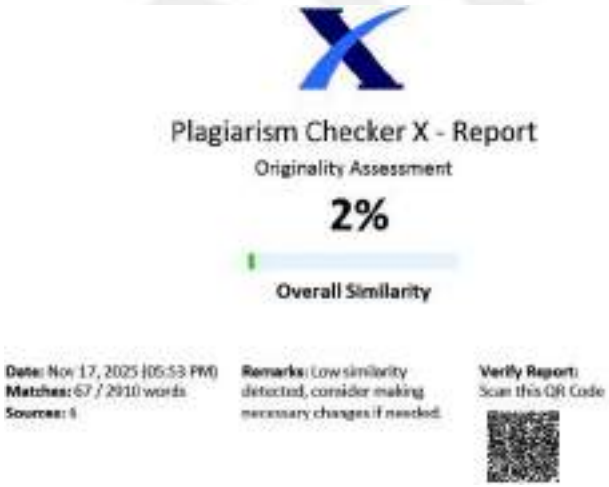

शोध सार

साहित्य और समाज का आपसी संबंध बहुत ही गहरा है। इस संदर्भ में हिंदी उपन्यासों ने राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने और समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने में महती भूमिका का निर्वाह किया है। हिंदी उपन्यासों ने स्वतंत्रता आंदोलन को प्रेरित करने के साथ ही साथ सामाजिक यथार्थ का भी बखूबी चित्रण किया है। तत्कालीन उपन्यासकारों ने औपनिवेशिक शासन–सत्ता की आलोचना की तथा किसानों के संघर्षों को दर्शाया है तथा साथ ही साम्यवादी चेतना को प्रखरता प्रदान करने की पुरजोर कोशिश की है। साहित्य समाज से निरपेक्ष नहीं रह सकता अतः परिवर्तित होती हुई राष्ट्रीय एवं अन्तर राष्ट्रीय परिस्थितियों ने साहित्य को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करने का काम किया है। हिंदी उपन्यास न सिर्फ आधुनिक काल की एक महत्वपूर्ण विधा रही है अपितु युग के राष्ट्रीय एवं राजनैतिक आंदोलन के विराट स्वरूप को चित्रित करने में भी सक्षम है। हिंदी उपन्यासों ने राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने के साथ ही सामाजिक सुधार, राष्ट्रीय एकता एवं स्वतंत्रता संग्राम की दशा एवं दिशा बदलने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रीय चेतना के विकास में हिंदी उपन्यासों की एक निर्णायक भूमिका रही है। उन्होंने ब्रिटिश सत्ता के समय आम जनमानस पर हो रहे अत्याचार एवं अन्याय के प्रति खुलकर विरोध प्रकट किया है। प्रेमचंद सरीखे लेखकों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से आम जनता की पीड़ा को उजागर करने का काम किया है तथा साथ ही राष्ट्रीयता का संदेश भी दिया है, जबकि अज्ञेय एवं जैनेन्द्र जैसे लेखकों ने व्यक्ति और समाज के मनोवैज्ञानिक चित्रण के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को बल प्रदान किया है।

मुख्य शब्द

राष्ट्रीय, चेतना, उपन्यास, आंदोलन, परतंत्रता, क्रान्ति.

प्रस्तावना

राष्ट्रीय चेतना प्रायः एक भावनात्मक वृत्ति होती है इसके अभाव में राष्ट्रीयता का निर्माण हो पाना संभव ही नहीं है। किसी भी राष्ट्र को जीवित रखने के लिए वहाँ के जनमानस में राष्ट्रीय चेतना का होना अनिवार्य होता है। भारतवर्ष में राष्ट्रीय चेतना का विकास एक लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया के साथ हुआ है। ठीक इसी प्रक्रिया के साथ हिंदी उपन्यासों में भी राष्ट्रीय चेतना का अनुशीलन देखने को मिलता है। अंग्रेजों के भारत में काबिज होने के साथ ही अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार–प्रसार बढ़ा। कुछ भारतीय बुद्धिजीवियों का अंग्रेजी साहित्य विशेषकर 'नावेल' से परिचय होने के साथ ही लगाव भी होने लगा। इससे प्रेरित एवं प्रभावित होकर भारतीय भाषाओं में भी उपन्यास लेखन प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम बंगाली एवं मराठी भाषाओं में यह विधा विकसित हुई धीरे–धीरे 19 वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में हिंदी भाषा में भी उपन्यास लेखन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी। तत्कालीन उपन्यासों में औपनिवेशी शासन का यथार्थ चित्रण किया गया। इन उपन्यासों में अंग्रेजी सरकार की क्रूरता व दमनकारी नीति के यथार्थ चित्रण ने भारतीय जनमानस को झकझोरने का कार्य किया । भारतीय जनमानस को इसके विरुद्ध एकजुट करने में हिंदी उपन्यासों की अहम भूमिका रही। भारतीय जनमानस को पराधीनता का बोध तथा उसके दुष्प्रभावों से परिचित कराने एवं उनके अन्तःकरण में राष्ट्रीय चेतना का संचार करने में हिंदी उपन्यासों ने महती भूमिका का निवर्हन किया है। निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि उपन्यासों में राष्ट्रीयता का स्वर सर्वाधिक मुखरित हुआ है। जैसे–जैसे राष्ट्रीय आंदोलनों में जनसहभागिता बढ़ी और इसका आधार क्षेत्र व्यापक हुआ वैसे–वैसे उपन्यास इसे वाणी प्रदान करने लगा । उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में स्वाधीनता संग्राम के विविध पक्षों को कल्पना की धार देकर यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का कार्य किया। कहने का अभिप्राय यह है कि इस प्रकार उपन्यासों ने राष्ट्रीय चेतना के विस्तार में अपना अमूल्य योगदान देते हुए एक बहुत बड़े तबके को राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में जोड़ने का काम किया।

हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा का प्रारम्भ 1870 से माना जाता है। यह वह दौर था जब राष्ट्रीय आंदोलन अपनी शैशव अवस्था में था। सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना के साथ ही राष्ट्रीय चेतना के विस्तार को कांग्रेस ने अपना मूल लक्ष्य बनाया। सही मायने में तो राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत यहीं से हुई ऐसा माना जाता है। लेकिन प्रारम्भिक चरण के कुछ कांग्रेसी नेतागण उपनिवेशवाद के स्वरुप को अभी भी समझ नहीं पाये थे। उनका मानना था कि यदि शीर्ष नेतृत्व तक अपनी बात पहुंचायी जाये तो उनकी समस्याओं का अवश्य ही निराकरण होगा, लेकिन जैसे–जैसे अंग्रेजी नैतिकता की पोल खुलती गई और औपनिवेशी शासन का असली चेहरा और चरित्र लोगों के सामने आया वैसे–वैसे आम जनमानस का सरकार से मोह भंग होता चला गया। इस दौर का हिंदी उपन्यासकार भी इस अन्तर विरोध से ग्रसित था। कुछ समय पश्चात् कांग्रेसी नेताओं, बुद्धिजीवियों एवं साहित्यकारों का भी भ्रम टूटा कि अंग्रेजी हुकुमत में भारतवर्ष उन्नति कर सकता है। कालान्तर में राष्ट्रीय आंदोलन व हिंदी उपन्यास विधा कंधे से कंधा मिलाकर चलने लगे। यद्यपि विकास के प्रारम्भिक दौर में हिंदी उपन्यास राष्ट्रीय भावना को इतनी प्रमुखता से अभिव्यक्त नहीं कर सका जितना कि प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् प्रेमचंद व प्रेमचंदोत्तर युगीन उपन्यासों में यह भावना देखने को मिलती है। "प्रेमचंद ने हिंदी कथा साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से ऊपर उठाकर जीवन के साथ जोड़ने का काम किया। ग्रामीण जीवन का ऐसा यथार्थ एवं प्रामाणिक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है कि इसे सर्वत्र सराहना प्राप्त हुई है। समाज में व्याप्त छुआछूत एवं साम्प्रदायिकता की समस्या को भी उन्होंने अपने उपन्यासों में अभिव्यक्ति दी है।"[1]

उपन्यास जगत् के पूरक कहे जाने वाले मुंशी प्रेमचंद का आविर्भाव उपन्यास साहित्य के लिए एक महत्वपूर्ण घटना है। प्रेमचंद को 'उपन्यास सम्राट' कहा जाता है। वे वस्तुतः हिंदी के प्रथम मौलिक साहित्यकार एवं युग प्रवर्तक कहे जाते हैं। इनके उपन्यासों में आम जनता को वाणी मिली है। प्रेमचंद के उपन्यासों का उद्देश्य केवल मनोरंजन ही नहीं था अपितु जीवन के वास्तविक सत्यों एवं मर्मों का उद्घाटन करना था। उनके उपन्यासों का कथाफलक विस्तीर्ण एवं व्यापक है। इनके उपन्यासों का लक्ष्य सदैव समाज सुधार रहा है। समाज में फैली अनेक सामयिक समस्याओं जैसे– पराधीनता, जमींदारी, पूँजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अंधविश्वास, दहेज प्रथा, नारी की विषम स्थिति, वेश्याओं की जिंदगी, बेमेल विवाह, विधवा समस्या,

साम्प्रदायिक वैमनस्य, अस्पृश्यता आदि जटिल समस्याओं ने प्रेमचंद को उपन्यास सृजन के लिए प्रेरित किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद व उनके उपन्यासों के संदर्भ में लिखते हैं– ''प्रेमचंद शताब्दियों से पददलित, अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे, पर्दे में कैद, पग–पग पर लांछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीबों और बेकारों के महत्व के प्रचारक थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुःख–सुख और सूझ–बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोपड़ियों से लेकर महलों, खोमचे वाले से लेकर बैंकों, गाँव से लेकर धारा–सभाओं तक, आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता।"[2]

महात्मा गांधी के आगमन के पश्चात् जिस प्रकार राष्ट्रीय संघर्ष को एक नई दिशा मिली ठीक उसी प्रकार प्रेमचंद का आगमन हिंदी उपन्यास विधा के लिए मील का पत्थर साबित हुआ। प्रेमचंद ने उपन्यास साहित्य को राष्ट्रीय राजनीति से जोड़कर उसे नये आयाम प्रदान किये। उपन्यास को जन आंदोलन का अभिन्न अंग बना दिया गया। सन् 1918 से 1936 तक राष्ट्रीय राजनीति में बापू और उपन्यासों में प्रेमचंद स्वतंत्रता संघर्ष का नेतृत्व कर रहे थे। ब्रिटिश सत्ता को समाप्त करने के लिए एक ओर जहाँ देश में विभिन्न आंदोलन चलाये जा रहे थे, वहीं दूसरी ओर इन आंदोलनों के राजनैतिक दर्शन को उपन्यास आम जनमानस तक पहुंचाकर राष्ट्रीय जागरण कर रहे थे। सन् 1920 के पश्चात् राष्ट्रीय आंदोलन की कोई भी ऐसी घटना नहीं है जिसे उपन्यासों ने चित्रित न किया हो। उस समय कांग्रेस ही राष्ट्रीम आंदोलन का केन्द्रीय मंच थी और प्रेमचंद भी कांग्रेस से ही जुड़े थे अतः कांग्रेस द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न जन आंदोलनों का उनके उपन्यासों में बखूबी चित्रण मिलता है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय चेतना के जागरण हेतु प्रेमचंद ने अपनी लेखनी बड़ी ही खूबसूरती से चलाई। उन्होंने अत्यन्त सहज–सरल भाषा का प्रयोग करते हुए अपनी बात जन–जन तक पहुंचाने का सफलतम प्रयास किया।

प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों में जयशंकर प्रसाद, विशम्भर–नाथ शर्मा 'कौशिक', आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', वृंदावन लाल वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी एवं जी.पी. श्रीवास्तव आदि प्रमुख हैं। जयशंकर प्रसाद ने कंकाल (1929) में व्यक्ति की स्वतंत्रता का समर्थन किया है, जबकि तितली (1934) में उन्होंने प्रेम के आदर्श स्वरुप की व्याख्या के साथ ग्रामीण समस्याओं का भी चित्रण किया है। इरावती प्रसादजी का अधूरा उपन्यास है। कौशिकजी के दो उपन्यास हैं। पहला भिखारिणी है इसमें अन्तर्जातीय विवाह की समस्या को कथानक का आधार बनाया गया है तथा इनका दूसरा उपन्यास मां है इसमें मध्यमवर्गीय परिवार का चित्रण करते हुए वेश्यालयों के वातावरण का चित्रण किया गया है। आचार्य चतुर सेन शास्त्री ने इतिहास–पुराण से कथानकों का चयन करने के साथ–साथ काल्पनिक पात्रों के द्वारा सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन करने वाले उपन्यास भी लिखे हैं। वैशाली की नगर वधू, वयं रक्षामः, सोमनाथ आलमगीर, सोना और खून, रक्त की प्यास, आत्मदाह, अमर अभिलाषा, मंदिर की नर्तकी, नरमेध, अपराजिता आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। उग्रजी के उपन्यासों में सामाजिक बुराइयों का पर्दाफाश किया गया है। चंद हसीनों के खतूत (1927), दिल्ली का दलाल (1927), बुधुआ की बेटी (1928), शराबी (1930), सरकार तुम्हारी आँखों में (1936), जीजाजी (1944), फागुन के दिन (1955) आदि प्रमुख उपन्यास हैं। प्रताप नारायण मिश्र के उपन्यास आदर्शवादी परम्परा का निर्वहन करते देखे गये हैं। विदा (1929), विजय (1937), विकास, विसर्जन, बेकसी का मजार आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। वृंदावनलाल वर्मा हिंदी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार माने जाते हैं। गढ़कुण्डार (1929), विराटा की पद्मिनी (1936), झांसी की रानी (1946), मृगनयनी (1950), टूटे कांटे (1954), माधवजी सिन्धिया (1957), संगम (1928), लगन (1929), प्रत्यागत (1929), कुण्डली चक्र (1932) इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। प्रसिद्ध कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने भी कुछ उपन्यास लिखे हैं जिनमें प्रमुख अप्सरा (1931), अलका (1931), निरुपमा (1936) तथा प्रभावती एवं कुल्लीभाट आदि प्रमुख हैं।

प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना को व्यापक सामाजिक संदर्भ में ग्रहण किया गया है। उनकी राष्ट्रीय मुक्ति की धारणा व्यापक सामाजिक सरोकार लिये हुए है। यही कारण है कि वह इसे समाज के उपेक्षित तबकों किसान एवं मजदूर की शोषण से मुक्ति के साथ जोड़कर देखते हैं फिर वह शोषण चाहे औपनिवेशी सरकार द्वारा

किया जा रहा हो या फिर जमींदार, महाजन या पूंजीपति वर्ग द्वारा। इसी कारण से उनके उपन्यासों में इन वर्गों पर गहरे कटाक्ष देखे जा सकते हैं। "इस संदर्भ में उनके उपन्यास 'गबन' का एक पात्र देवीदीन खटिक तथाकथित बड़े–बड़े देश भक्तों की पोल–पट्टी खोलता हुआ नजर आता है कि उनके घर में जाकर देखो एक चीज भी देशी नहीं मिलेगी। अरे..... तुम क्या देश का उद्धार करोगे पहले अपना उद्धार कर लो।"[3]

प्रायः यह देखा गया है कि प्रेमचंद की लेखनी की धार कभी कुंद नहीं पड़ी। उन्होंने सामंती तत्वों पर गिन–गिन कर प्रहार किये हैं। वह प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, गोदान आदि उपन्यासों के माध्यम से सामंती तत्वों व तथाकथित धर्म के ठेकेदारों पर वह जमकर बरसे। उच्च व निम्न वर्ग के नाम पर देश अनेक जातियों में बंटता चला जा रहा था। जातीय विभाजन के इस पाखण्ड ने भारत के एक बहुत बड़े समुदाय को शूद्र श्रेणी में डाल दिया था। प्रेमचंद को यह बात बहुत ही नागवार गुजरी और उन्होंने अपने उपन्यास गोदान, कर्मभूमि, प्रतिज्ञा आदि में शूद्रों के साथ होने वाले अमानवीय व्यवहार पर गम्भीर कटाक्ष किये हैं। "वह जातीय भेदभाव की कृत्रिमता एवं इससे उत्पन्न फूट को न सिर्फ अपने उपन्यासों में यथार्थता के साथ उद्घाटित करते हैं बल्कि सवर्ण तबके के जातीय दंभ व निम्न तबके में हीनता के भाव को भी बखूबी चित्रित करते हैं। इस प्रकार उनके उपन्यासों में सामाजिक चिंतन के साथ–साथ राष्ट्रीय चिंतन भी खूब ध्वनित होता है। वह समाज में व्याप्त रुढ़ियों, अंधविश्वासों व अज्ञानता पर भी तीखा प्रहार करते हैं। यह सारी चीजें राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बड़ी बाधा थीं। सही मायने में यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद ने अपनी लेखनी के जरिए समाज में एक बड़ा एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का काम किया।"[4]

प्रेमचंद व कुछ अन्य परवर्ती उपन्यासकारों की लेखनी में भी राष्ट्रीय चेतना को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली। इस संदर्भ में वृंदावनलाल वर्मा अपने उपन्यास 'प्रत्यागत' में एवं इलाचन्द्र जोशी 'संन्यासी' उपन्यास में तथा चतुरसेन शास्त्री अपने 'आत्मदाह' उपन्यास में, भगवतीचरण वर्मा 'भूले बिसरे चित्र' उदयशंकर भट्ट कृत 'डॉ. शेफाली' उपन्यास में, दुर्गादास मेहता कृत 'अनुबूझी प्यास' उपन्यास में तथा अज्ञेय कृत 'शेखरः एक जीवनी' उपन्यास में, न सिर्फ असहयोग आंदोलन को प्रचारित – प्रसारित किया है बल्कि कृषक आंदोलन व स्वदेशी जैसे मुद्दों को प्रेमचंद के अलावा अन्य कई उपन्यासकारों ने भी इसे मुख्य विषय वस्तु बनाया है। साहित्यकार निराला के 'अलका' उपन्यास में किसान आंदोलन के उभार को दर्शाया गया है। इसमें लगान बंदी आंदोलन के दौरान किसानों के शोषण तथा उनके साथ होने वाले अमानवीय व्यवहार के अनेक प्रसंग दिये गये हैं। राहुल सांकृत्यायन ने अपने उपन्यास 'भागो नहीं दुनियाँ बदलो' में भईया जी नामक पात्र के माध्यम से चम्पारण सत्याग्रह का गुणगान किया है। गांधी–इरविन पैक्ट के पश्चात् लगान बंदी आंदोलन के दौरान गिरफ्तार किये गये कैदियों की रिहाई से लोगों में जिस प्रकार का उत्साह और आत्मविश्वास झलका उसको मन्मथनाथ गुप्त ने अपने 'अपराजित' उपन्यास में बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। वह लिखते हैं कि लोगों के चेहरे ऐसे खिले हुए थे कि मानो उन्होंने स्वराज की पहली किरण देख ली हो। गांधीवादी के इस दौर में स्वदेशी को लगातार प्रोत्साहन मिलता रहा। स्वदेशी वस्तुओं के साथ–साथ स्वभाषा, स्वसंस्कृति, स्वदेश प्रेम आदि की भावना उपन्यासकारों ने अपनी लेखनी में खूब पिरोई । अज्ञेयजी के एक उपन्यास 'शेखरः एक जीवनी' में उसका मुख्य पात्र शेखर स्वदेशी से प्रभावित होकर न सिर्फ विदेशी वस्तुओं का परित्याग कर देता है बल्कि घर के सारे विदेशी वस्त्रों में भी आग लगा देता है।

इसी क्रम में भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'भूले बिसरे चित्र' में एक पात्र कलेक्टर गंगा प्रसाद जब दुकान पर विदेशी शर्ट खरीदने जाता है, तो दुकानदार उससे कहता है कि बाबू साहब आप चारो ओर स्वदेशी का नारा नहीं सुन रहे हैं आजकल तो लोग विदेशी कपड़ों की होली जला रहे हैं। स्वदेशी आंदोलन का एक अहम् पक्ष चरखा व खादी का प्रचार–प्रसार भी करना था। श्रीनाथ सिंह के उपन्यास 'जागरण' में स्वदेशी की बात उठायी गयी है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र कृपाशंकर कहता है कि हाथ से तैयार किए हुए वस्त्रों का व्यवसाय करें तो देश का धन देश में ही रहेगा तथा देश में व्याप्त बेकारी एवं भुखमरी जैसी समस्यायें भी कम होंगी।

राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ में उपन्यासों की भूमिका सदैव स्तुत्य रहेगी। प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में भी मनोवैज्ञानिकता, यथार्थवाद, अवचेतनवाद एवं प्रतीकवाद जैसी प्रवृत्तियाँ समाहित हुई हैं। इस युग का उपन्यास

साहित्य प्रेमचंद, युग से कहीं अधिक व्यापक एवं विस्तीर्ण है, लेकिन प्रेमचंद जैसी गहराई इस युग के उपन्यासों में बहुत कम दिखाई देती है। इस युग में सामाजिक उपन्यास, मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, आंचलिक उपन्यास, यौन आधारित उपन्यास तथा आधुनिकता बोध के विविध उपन्यास देखने को मिलते हैं।

अन्य उपन्यासों में श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्यात्मक कृति 'रागदरबारी' राजनीति पर कटाक्ष करने वाली कृति है। उपन्यास जगत् में 70 और 80 के दशक में विविध विषयों पर रचनाएँ हुई। इनमें से व्यक्तिवादी प्रवृत्ति, जीवन–बोध, नारी शोषण, वैवाहिक संबंधों के विच्छेद का निरुपण, नौकरी पेशा मध्यवर्गीय शहरी जीवन का अंकन, आँचलिक व कस्बाई जन–जीवन का चित्रण, कामवासना व यौन संबंधों का चित्रण आदि जीवन से जुड़े विषय प्रमुख रहे। शिवप्रसाद सिंह का 'अलग–अलग वैतरणी' राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव', मणि मधुकर का 'सफेद मेमने' तथा 'नदी फिर बह चली', बदी उजमा का 'एक चूहे की मौत', रमेश चन्द्र शाह का 'गोबर गणेश' तथा 'किस्सा गुलाम का' इस युग के उल्लेखनीय उपन्यास हैं। अमृतलाल नागर का 'नाच्यो बहुत गोपाल' उपन्यास हरिजन समाज के जीवन चरित्र को उकेरता है। वहीं जगदीश चन्द्र के उपन्यास 'धरती धन न अपना' में भी इसी समाज का चित्रण किया गया है। भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' भारत–पाक विभाजन की समस्या का एक कोरा चिट्ठा है।

कहने का तात्पर्य यह है कि अनेक उपन्यासकारों ने अपने – अपने तरीकों से विदेशी सत्ता को उखाड़ फेकने वाले क्रान्तिकारी मतों का समर्थन किया है। इस क्रम में मन्मथनाथ गुप्त का उपन्यास 'अंधेरी रात' गोविन्द वल्लभ पंत का 'मुक्ति के बंधन', उदय शंकर भट्ट का 'शेष–अशेष' तथा रघुवीर शरण मित्र का 'बलिदान' उपन्यास क्रान्तिकारी गतिविधियों का पुरजोर समर्थन करते हैं जिसमें सरकारी खजाने की लूट, शस्त्रागार की लूट तथा शासकों की हत्या आदि का चित्रण किया गया है। राष्ट्र के प्रति त्याग की भावना एवं समर्पण के चलते यह वीर क्रान्तिकारी मिसाल बने तो वहीं उपन्यासकारों ने भी उन्हें अपनी रचनाओं में स्थान देकर सदा–सदा के लिए अमर कर दिया।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र में राष्ट्रीय चेतना में हिंदी उपन्यासों की भूमिका का सम्यक अध्ययन किया गया है साथ ही साथ राष्ट्रीय जागरण में उपन्यासकारों की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है। राष्ट्रीय चेतना के जागरण हेतु राष्ट्रीय आंदोलन अनेक चरणों से होकर गुजरा। किसान, मजदूर, बुद्धिजीवी वर्ग, जमींदार, नव पूंजीपूति वर्ग व साहित्यकार आदि वर्गों ने परिस्थिति के अनुकूल इसमें अपना योगदान दिया। उदारवाद, उग्रवाद, गांधीवाद, समाजवाद एवं क्रान्तिकारिता जैसे विविध वैचारिक पक्षों ने राष्ट्रीय चेतना को व्यापक आयाम दिये। तत्कालीन दौर का हिंदी उपन्यासकार भी राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़कर अपनी लेखनी को धार देने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ रहे थे तथा साथ ही औपनिवेशी जकड़न व उसके दुष्प्रभावों से आमजन मानस को सचेत करने में लगे थे। यह शोध आलेख 'राष्ट्रीय चेतना में हिंदी उपन्यासों की भूमिका' अवश्य ही एक मील का पत्थर साबित होगा।

संदर्भ सूची

1. तिवारी, अशोक (2012) हिंदी प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, साहित्य भवन, आगरा, पृ. 129।
2. शर्मा, हरिचरण (2010) हिंदी (द्वितीय प्रश्न–पत्र), इण्डिया बुक हाउस, जयपुर, पृ. 340।
3. वही, पृ. 343।
4. नारायण, सुषमा (1966) भारतीय राष्ट्रवाद की हिंदी साहित्य में अभिव्यक्ति, *हिंदी साहित्य संसार,* दिल्ली, पृ. 32।

****